शोध मंथन, Impact Factor 5.463 (SJIF), UGC No. 40908 ISSN: (P): 0976-5255, (e) : 2454-339X,
Vol. 9, Issue 3, pp (284-287), Month: Sep. 2018

'श्रीमद्भगवद्गीता' के अध्याय पन्द्रह के आलोक में भगवान् की विभूतियों का वर्णन

डॉ० रंजना अग्रवाल
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
एन.के.बी.एम.जी. कॉलेज, चन्दौसी
ईमेलः pranav.experia@gmail.com

सारांश

युद्धभूमि में खड़े हुए अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण से गुणातीत होने का उपाय पूछ रहे हैं। गुणों के संग से ही जीव संसार में फँसता है। अतः गुणों का संग मिटाने के लिए भगवान् यहाँ अपने प्रभाव का वर्णन करते हैं। छोटे प्रभाव को मिटाने के लिए बड़े प्रभाव की आवश्यकता होती है। अतः जीव पर जब तक गुणों (संसार) का प्रभाव है, तब तक भगवान् के प्रभाव को जानने की बड़ी आवश्यकता है।अपने प्रभाव का वर्णन करते हुए भगवान् ने पुरुषोत्तम योग नामक अध्याय १५ के बारहवें श्लोक से लेकर १५ श्लोक पर्यंत अपनी अलौकिक विभूतियों का वर्णन किया है। भगवान् कहते हैं कि मैं ही सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता हूँ, मैं ही पृथ्वी में प्रवेश कर के सम्पूर्ण प्राणियों को धारण करता हूँ, मैं ही धरती पर अन्न उत्पन्न करके उसको पुष्ट करता हूँ, जब मनुष्य उस अन्न को खाता है, तो मैं ही वैश्वानररूप से उस अन्न को पचाता हूँ, मनुष्य में स्मृति, ज्ञान और अपोहन भी मैं ही करता हूँ। इस वर्णन से यह सिद्ध हो जाता है कि आदि से अंत तक,समष्टि से व्यष्टि तक सम्पूर्ण क्रियाएँ भगवान् के अन्तर्गत ,उन्हीं की शक्ति से हो रही हैं। व्यक्ति अहंकार वश अपने को उन क्रियाओं का कर्ता मान लेता है अर्थात् उन क्रियाओं को व्यक्तिगत मान लेता है और उसमें बँध जाता है।

सूर्य, चन्द्र और अग्नि के तेज परमात्मा का ही तेज है।

भगवान् ही पृथ्वी में प्रविष्ट होकर अपनी शक्ति से समस्त प्राणियों को धारण करते हैं और रसरूप चंद्रमा होकर समस्त वनस्पतियों को पुष्ट करते हैं।

समस्त प्राणियों के शरीर में रहकर प्राण अपान से युक्त वैश्वानर होकर चार प्रकार के अन्न को पचाते हैं।

भगवान् ही सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में स्थित हैं और उनसे ही स्मृति ज्ञान और अपोहन (संशय आदि दोषों का नाश होता है) सम्पूर्ण वेदों के द्वारा जानने योग्य, वेदों के तत्व का निर्णय करने वाला, और वेदों को जानने वाले भी भगवान् ही हैं। मैं अपने निम्न शोध–पत्र में श्रीमद्भगवद्गीता के 'पुरुषोत्तम योग' नामक पन्द्रहवें अध्याय के आलोक में तेरहवें और पन्द्रहवें श्लोक में वर्णित भगवान् की विभूतियों की किंचित् व्याख्या का प्रयास कर रही हूँ।

गामाविष्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः।।

श्रीमद्भगवद्गीता 15/13 '1'

अर्थ

भगवान् कहते हैं कि मैं ही गतिशील पदार्थों में प्रवेश करके अपनी शक्ति से सब भूतों को धारण करता हूँ और रसस्वरूप सोम होकर सम्पूर्ण ओषधियों अर्थात् वनस्पतियों को पुष्ट करता हूँ।

विवेचना

गामाविश्य च भूतानि धारयामि – गो अर्थात् गतिशील, जिसमें गति हो। पृथ्वी, सूर्य की किरण, इन्द्रियाँ, परमाणु, गाय इत्यादि सभी को गो कहा जाता है, क्योंकि इन सब में गति है, परन्तु यहाँ पर भगवान का गो से आशय उस पदार्थ से है, जिसमें प्रवेश करके परमात्मा सभी भूतों अर्थात् प्राणियों और पदार्थों को अपने ओज से धारण करता है। निश्चय ही वह पदार्थ उपर्युक्त में से कोई नहीं हो सकता है।

कुछ विद्वान् गो का अर्थ पृथ्वी करते हैं। उनका कहना है कि परमात्मा पृथ्वी में प्रवेश करके सभी प्राणियों को धारण करता है। परन्तु पृथ्वी तो स्वयं एक भूत है। इसको भी परमात्मा धारण करता है। पृथ्वी ही क्यों ? जल, अग्नि, वायु और आकाश भी भूत हैं। इन पाँचों को मिला कर पञ्चमहाभूत कहा जाता है। इन सबको परमात्मा धारण करता है।

ये पञ्चमहाभूत पञ्चतन्मात्राओं से बने हैं, तो क्या वह पदार्थ तन्मात्रा है, जिसमें आविष्ट होकर परमात्मा इन पञ्चमहाभूतों को धारण करता है? तन्मात्राओं का निर्माण, तीन अहंकारों वैकारिक, तैजस और भूतादि से होता है। ये अहंकार भी महत् तत्त्व से बने हैं और यह महत्, तीन गुणों सत्त्व, रज और तम से बना है।

ये गुण, जब गतिशील होते हैं, तब इनके वेग से अव्यक्त मूल प्रकृति में महान् विस्फोट द्वारा विक्षोभ होकर महत् तत्त्व बनता है।

इस घटनाक्रम का वर्णन श्रीमद्भागवत में इस प्रकार हैं–

मायापति परमात्मा ने अपनी शक्ति (माया) से अपने कर्म और स्वभाव से काल को प्रभावित कर दिया।

श्रीमद्भागवत 2–5–21 '2'

काल ने तीनों गुणों में क्षोभ उत्पन्न कर दिया स्वभाव (अव्यक्त प्रकृति) ने उन्हें रूपान्तरित (साम्यावस्था से असाम्यावस्था में) कर दिया और परमात्मा के कर्म ने महत् तत्त्व को जन्म दिया।

श्रीमद्भागवत 2–5–22 '3'

अभिप्राय यह कि समय आने पर परमात्मा ने अपनी शक्ति से अव्यक्त प्रकृति में साम्यावस्था में स्थित, तीनों गुणों की साम्यावस्था को भङ्ग कर दिया। इस घटना ने महान् विस्फोट को जन्म दिया। फलस्वरूप तीनों गुण बहिर्मुखी होकर आकर्षण और विकर्षण करने लगे। इससे महत् बना।

महत् में विकार होने लगा। उस समय सत्त्व और रज की वृद्धि होने पर तमप्रधान विकार हुआ। ये तीनों ज्ञानक्रियाद्रव्यात्मक थे।

श्रीमद्भागवत 2–5–23 '4'

यह अहङ्कार कहलाया, जो विकार को प्राप्त होकर तीन प्रकार का हो गया। उसके भेद हैं– वैकारिक, तैजस और भूतादि। ये क्रमशः ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और द्रव्यशक्ति प्रधान थे।

श्रीमद्भागवत 2–5–24 '5'

इनमें से वैकारिक अहङ्कार, जगत् के निर्माण के ज्ञान, तैजस अहङ्कार, निर्माण हेतु शक्ति और भूतादि अङ्कार, भौतिक पदार्थ (स्थूलभूत) बना देने हेतु प्रयुक्त हुए।

यह भूतादि अहङ्कार ही भौतिक पदार्थों को बना सका। ये पदार्थ ही स्थूल भूत कहलाते हैं।

भगवान कह रहे हैं कि मैं इन तीनों गुणों में प्रविष्ट होकर उन्हें गतिमान बना देता हूँ। उससे बने इन भूतों को मैं धारण करता हूँ। यह सब मैं अपने ओज से कर पाता हूँ।

स्थूलभूतों के निर्माण की ठीक यही प्रक्रिया मनुस्मृति और सांख्य दर्शन में कही गयी है।

सांख्य दर्शन में कहा है–

सत्व, रजस् और तमस् की साम्यावस्था को अव्यक्त प्रकृति कहते है। साम्यावस्था भङ्ग होने पर महत् बनता है। महत् से तीन अहङ्कार, पाँच तन्मात्राएँ, दस इन्द्रियाँ और तन्मात्राओं से पाँच महाभूत। पच्चीसवाँ गण है पुरुष ।

सांख्य दर्शन 1–61 '6'

इतना वर्णन करके हम यह बताना चाहते हैं कि भूतों को धारण करने के लिए परमात्मा जिस गतिशील पदार्थ में प्रविष्ट होता है वह एक पदार्थ नहीं है, अपितु पदार्थों की श्रृंखला है। इन सबको गतिशील रखने में परमात्मा की शक्ति कार्य कर रही है। तत्पश्चात् स्थूलभूत बने सभी पिण्ड भी गतिमान होते हैं। इन पिण्डों के आश्रय विभिन्न प्रकार के प्राणी रहते हैं। इन सबको परमात्मा अपने ओज से धारण करता है।

पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः –

भगवान कहते हैं कि मैं रसात्मक सोम बनकर सभी औषधियों को पुष्ट करता हूँ।

परमात्मा सोम नहीं बन जाता। सोम, परमात्मा के बनाने से बनता है। चन्द्रमा, सूर्य की किरणों को सोखकर एक रसात्मक पदार्थ बनाता है, जिसे सोम कहते हैं। यह सोम चन्द्रमा की रश्मियों के आश्रय वनस्पतियों, औषधियों को

पुष्ट करता है। यह सोम अद्वितीय पदार्थ है, और चन्द्रमा की किरणों में पाया जाता है। इसीलिए चन्द्रमा को ही सोम कहा जाता है। यह सोम प्राणियों को भी पुष्ट करता है।

प्रश्नोपनिषद में कहा है कि प्राण और रयि दोनों मिलकर प्रजा को उत्पन्न करते हैं।

परमात्मा ने जब सृष्टि का निर्माण किया तब इन दोनों को इसलिए बनाया कि ये दोनों प्रजाओं को उत्पन्न करेंगे।

प्रश्नोपनिषद् 1–4 '7'

आदित्य के आश्रय प्राण और चन्द्रमा के आश्रय रयि चलता है। इसलिए चन्द्रमा को ही रयि कह दिया जाता है। जितने भी मूर्त अथवा अमूर्त पदार्थ हैं, उन सब में रयि है।

इसलिए सभी मूर्तिमान पदार्थ रयि (के कारण) हैं।

प्रश्नोपनिषद् 1—5 '8'

सूर्य की रश्मियों का आश्रय लेकर देह में जीवात्मा (प्राण) आ बैठता है। यह बात हम पहले भी कह चुके हैं।

इसलिए प्राणी, सूर्य और चन्द्रमा दोनों के आश्रय से ही जन्म ले पाता है। इसमें प्राणियों की देह की पुष्टि में रयि और सोम महत्त्वपूर्ण होने के कारण ही भगवान कह रहे हैं कि परमात्मा सोम को बना कर औषधियों को पुष्ट करता है, जो अन्ततः प्राणियों को पुष्ट करतीं हैं।

अब हम श्लोक १५ की व्याख्या करेंगे।

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।।

श्रीमद्भगवद्गीता 15—15 '9'

अर्थ

मैं ही सब प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से स्थित हूँ तथा मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन होता है। सभी वेदों द्वारा मैं ही जानने योग्य हूँ। वेदान्त का कर्ता और वेदों को जानने वाला भी मैं ही हूँ।

इस श्लोक में भगवान, प्राणियों के हृदय में अत्यन्त निकट बैठकर उनकी मानसिक प्रक्रियाओं को परमात्मा के द्वारा सञ्चालित किये जाने का वर्णन करते हैं।

सर्वस्य च अहम् हृदि सन्निविष्टः — परमात्मा सभी प्राणियों के हृदय में सन्निविष्ट है। अर्थात् हम जानते हैं कि प्राणियों के शरीर में हृदयस्थल में एक गुहा में जीवात्मा रहता है।

उसी हृदय में परमात्मा भी उपस्थित रहता है।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

भगवद्गीता 18—61 '10'

अर्जुन! ईश्वर, सभी प्राणियों के हृदय देश में स्थित है।

हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।

भगवद्गीता 13—17 '11'

परमात्मा, सबके हृदय में बैठा हुआ है।

यहीं पर जीवात्मा का परमात्मा से सम्पर्क होता है। परमात्मा तो सर्वव्यापी होने के कारण सर्वत्र विद्यमान है। जीवात्मा एकदेशी होने के कारण हृदय की गुहा में ही रहता है।

यहाँ यह बात समझने की है कि परमात्मा सबके हृदय में अपनी सारी शक्तियों के साथ विद्यमान है। वह वरिष्ठ–कनिष्ठ, धनी–निर्धन, विद्वान्–मूर्ख, बलवान–निर्बल, ब्राह्मण–शूद्र, स्त्री–पुरुष इत्यादि सबके हृदयों में समान रूप से विराजमान है। संसार में लोग किसी को अध्ययन, मनन, पूजा पाठ, देवदर्शन, उपासना पद्धतियों में कितने ही विधि–निषेध करें, परन्तु परमात्मा इन विधि–निषेधों से परे, सबको समान समझकर उनके हृदयों में समान रूप से बैठा है।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।

भगवद्गीता 13–27 '12'

परमात्मा सभी पदार्थों और प्राणियों में समान रूप से बैठा हुआ है।

इसमें विशेष बात यह है, कि जीवात्मा इस रहस्य को जानता ही नहीं है, कि परमात्मा उसके अति निकट सम्पर्क में है। ऐसा नहीं है कि वह परमात्मा की शक्ति का उपयोग नहीं करता। वह उसका उपयोग तो भलीभाँति करता है, परन्तु उसे वह, अपनी ही शक्ति समझता है। वह संसार में यह नहीं देख और समझ पाता, कि परमात्मा गतिशील परमाणुओं के भीतर घुसकर उन्हें क्रियाशील करके, अपने ओज से सम्पूर्ण पदार्थों और प्राणियों को धारण करता है। इतना ही नहीं, वह अपने ही शरीर में वैश्वानर अग्नि के उस महान् पराक्रम को नहीं देख पाता, जिससे उसके द्वारा उपभुक्त अन्न पचाए जाकर, विविध धातुएँ निर्मित होतीं हैं और शरीर के विभिन्न अङ्गों में यथावत् और यथावश्यक पहुँचतीं हैं। प्राणियों में यदि मनुष्य ठीक से विचार करें, तो वह सहज ही समझ सकता है, कि अन्नों को पचाने का कार्य उसकी शक्ति से बाहर है।

जङ्गम प्राणियों के हृदय की गुहा तो उनके मस्तिष्क के एक अति सूक्ष्म भाग में होती है। इसे हमारे देश की संस्कृत भाषा में दहर कहा जाता है। अन्य स्थावर प्राणियों जैसे वनस्पति आदि में यह गुहा, उनकी जड़ों के निकट होती है।

वहाँ बैठकर परमात्मा क्या करता है, यह आगे बताया गया है।

मत्तः स्मृति ज्ञानम् अपोहनम् च

प्राणियों के जो स्मृति, ज्ञान और अपोहन इत्यादि गुण हैं, वे परमात्मा के कारण हैं।

स्मृति

किसी पुरानी बात, तथ्य, स्थान अथवा जानकारी का स्मरण होने को स्मृति कहा जाता है। भगवान कहते हैं, कि स्मृति मेरे कारण होती है।

स्मृति तो मन पर पड़ा हुआ संस्कार है। मन एक फोटो प्लेट की भाँति काम करता है। यह मन, इन्द्रियों से प्राप्त अनुभूति को इसी प्लेट पर अंकित करके सँजो लेता है। कभी आवश्यकता पड़ने पर वह इस प्लेट पर लिखे हुए को जैसे ही देखता है, उसे सब कुछ स्मरण आ जाता है। यहाँ पर प्रश्न, यह उठता है कि सम्बन्धित अनुभूति को मन के पास कौन उपस्थित करता है, जिसके कारण उसे स्मृति हो जाती है। यह कार्य, मन तो स्वयं जड़ होने के कारण कर नहीं सकता। हाँ, जीवात्मा चेतन होने के कारण कर सकता है, परन्तु वह कर नहीं पाता। वह इस कारण कि जब स्मरण करना हो, तब यह जीवात्मा स्मरण नहीं कर पाता।

मनुष्य जब किसी भूली हुई बात को स्मरण करना चाहता है, तो वह उसे सहसा स्मरण नहीं कर पाता। कभी कभी तो उसे विश्वास भी रहता है, कि वह जानता है, परन्तु स्मरण नहीं

आ रहा है। तभी अचानक उसे स्मरण हो आता है। इसी प्रकार स्मृत (जो बात स्मरण में है) बात को वह भूल नहीं पाता। इससे सिद्ध है कि यह स्मरण करना और भूल जाना दोनों मनुष्य के वश में नहीं है। यह सब परमात्मा के अधीन है। वही स्मरण और विस्मरण का हेतु अथवा कारण है।

ज्ञान

अर्थात् जानकारी। यह ज्ञान दो प्रकार का होता है। एक तो ज्ञानेन्द्रियों द्वारा मन को प्राप्त अनुभव, और तदनन्तर वही ज्ञान जीवात्मा को प्राप्त होता है। यह ज्ञान प्रायः संसार के सम्बन्ध में ही होता है। जीवात्मा को यह ज्ञान, परमात्मा के कारण ही होता है। इसमें रहस्य यह है कि इन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान के मन के द्वारा जीवात्मा तक पहुँचने का संयोजन तो परमात्मा ने ही कर रखा है।

दूसरे प्रकार का ज्ञान जीवात्मा स्वयं प्राप्त करता है। इसमें उसे इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह ज्ञान उसे सदा ही रहता है, परन्तु माया अथवा प्रकृति के गुणों से विमोहित होने के कारण वह समझता है, कि उसे ज्ञान नहीं है। जब माया का आवरण हटता है तब उसके समक्ष सब ज्ञान प्रकट हो जाता है। यह वैसे ही है, जैसे धुएँ अथवा राख से अग्नि, ढँकी होने पर नहीं दिखाई देती, परन्तु धुआँ अथवा राख हटा देने पर आग का अँगार प्रकट हो जाता है। इस बात को भगवद्गीता में इस प्रकार कहा गया है।

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्।।

भगवद्गीता 3–38 '13'

जिस प्रकार धुएँ से अग्नि और मैल से दर्पण ढँक जाता है तथा जैसे जेर से गर्भ ढँका रहता है, उसी प्रकार काम से, यह ज्ञान ढँका रहता है।

परमात्मा को भी जो ज्ञान होता है, वह इन्द्रियों के सहयोग के बिना ही होता है। उसके सम्बन्ध में कहा गया है कि –

सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चौव निर्गुणं गुणभोक्तृ च।।

भगवद्गीता 13–14 '14'

वह परमात्मा सभी इन्द्रियों से रहित होकर भी सभी इन्द्रियों के गुणों को जानता है। वह अनासक्त भाव से सब का भरण पोषण करता है। वह निर्गुण होता हुआ भी, सभी गुणों (त्रिगुणों) का भोक्ता है।

यह दूसरे प्रकार का ज्ञान भी जीवात्मा को, परमात्मा की शक्ति के कारण ही हो पाता है। यह माया का आवरण, जीवात्मा अपने बल से कभी नहीं हटा पाता है। इस तथ्य को भी गीता में इस प्रकार कहा गया है–

दैवी ह्येषा गुणमयी मम मायातिदुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।

भगवद्गीता 7–14 '15'

परमात्मा की यह माया दिव्य गुणों वाली है। इसको पार करना अत्यधिक कठिन है। हाँ, जो परमात्मा के पदचिह्नों पर चलने लगते हैं, वे इस माया को सहजता से पार कर जाते हैं।

उपनिषद् भी इस सम्बन्ध में यही कहते हैं।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य–
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।

कठोपनिषद 1–2–23 '16' मुण्डकोपनिषद 3–2–3 '17'

यह आत्मा प्रवचन से नहीं जाना जा सकता है। मेधा से भी नहीं और बहुत सुनने से भी नहीं जाना जा सकता। यह तो जिसको स्वीकार कर लें, उसे ही अपने यथार्थ स्वरूप को प्रकट कर देता है।

बिना इन्द्रियों के परमात्मा और जीवात्मा के इस ज्ञान में एक बड़ा अन्तर होता है। वह अन्तर यह है, कि जीवात्मा बहुत अल्पज्ञानी होता है और परमात्मा सर्वज्ञ होता है। जीवात्मा को न्यून ज्ञान और परमात्मा को सम्पूर्ण ज्ञान होता है।

जीवात्मा को ये दोनों प्रकार के ज्ञान, इन्द्रियों के सहयोग और इन्द्रियों के सहयोग के बिना, परमात्मा की शक्ति से हो पाते हैं।

अपोहन

अपोहन अर्थात् भूल जाना। भगवान आदिशंकराचार्य जी इसका अर्थ करते हुए लिखते हैं,

पापकर्मिणां पापकर्मानुरूपेण स्मृतिज्ञानयोः
अपोहनं च अपायनं अपगमनं च।

अर्थात् पापकर्मियों का पापकर्मों के अनुसार स्मृति और ज्ञान का लोप हो जाना अपोहन है। इसे अप्राप्त होना अथवा अपगमन हो जाना भी कहा जाता है।

इसका ही आशय है कि मनुष्य में अपोहन परमात्मा के कारण होता है।

वेदैः च सर्वैः अहम् एव वेद्यः

सभी वेदों के द्वारा जानने योग्य केवल परमात्मा ही है। वेद का अर्थ ज्ञान भी होता है और ऋग्वेदादि चारों वेद भी होता है। वेदों में संसार और परमात्मा दोनों का सम्पूर्ण ज्ञान विद्यमान है। वेदों से संसार को ठीक ठीक जाना जा सकता है और परमात्मा को भी भलीभाँति जाना जा सकता है।

ऐसा ही भगवद्गीता में अन्यत्र भी लिखा है।

ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।

भगवद्गीता 13–17 '18'

परमात्मा ज्ञानस्वरूप है और ज्ञान से जाना भी जा सकता है।

यह ज्ञान की महिमा है कि इससे परमात्मा को पाया जा सकता है।

इस सम्बन्ध में यह बात अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है वेदाध्ययन से सदाचारी व्यक्ति ही लाभ उठा सकता है। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि –

आचारहीनं न पुनन्ति वेदा
यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः।
छन्दांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति
नीडं शकुंता इव जातपक्षाः।।

(वसिष्ठ स्मृति 6–3 '18', देवी भागवत 11–2–1 '19'

शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, व्याकरण और ज्योतिष इन छः अङ्गों सहित अध्ययन किए हुए वेद भी आचारहीन मनुष्य को पवित्र नहीं करते। मृत्युकाल में आचारहीन मनुष्य को, वेद वैसे ही छोड़ देते हैं, जैसे पंख उगने पर पक्षी, अपने घोंसले को।

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम्।।

मनुस्मृति–4–156 '20'

मनुष्य आचार से आयु को प्राप्त करता है, आचार से अभिलषित सन्तान को प्राप्त करता है, आचार से अक्षय धन को प्राप्त करता है और आचार से अनिष्ट लक्षण को नष्ट कर देता है।

वेदान्तकृत्

वेदान्त का कर्त्ता परमात्मा है। वेदों के अन्तिम और निर्णायक रहस्यों का जानकार और जनाने वाला परमात्मा है। परमात्मा की कृपा के बिना वेदों के यथार्थ स्वरूप को समझ पाना दुष्कर है।

आजकल जो लोग वेदों की बातें करते फिरते हैं, उन्हें वेदों और उनमें सन्निहित ज्ञान की कोई जानकारी नहीं है। वेदों का वास्तविक अर्थ, सदाचारपूर्वक परमात्मा की कृपा से ही जाना जा सकता है।

वेदवित् एव च अहम्

परमात्मा ही वेदवित् है। अर्थात् वेदों को यथार्थता से परमात्मा और उनकी कृपा से मनुष्य जान पाते हैं।

इसी अध्याय के पहले श्लोक में भगवान ने कहा था कि जो संसार वृक्ष को भली–भाँति जानता है, वह वेदवित् है, अर्थात् वेद का जानकार है। यहाँ भगवान कह रहे हैं कि वेदवित् परमात्मा है।

इसका तात्पर्य यह है कि संसार को भली प्रकार समझ लेने वाला मनुष्य, उसी प्रकार वेदवेत्ता हो जाता है, जैसे परमात्मा वेदों को जानता है। तब परमात्मा के वेद जानने और मनुष्य के वेद जानने में कोई अन्तर नहीं रह जाता। ऐसा क्यों ? ऐसा इसलिए कि परमात्मा, संसार को भली भाँति समझकर, उसमें लिप्त नहीं होता। यह उसका वेदवित् होना है। इसी प्रकार यदि मनुष्य संसार को ठीक से समझ ले और इसके आकर्षण में न फँसे, वैराग्य रूपी तलवार से इस संसार वृक्ष को काटकर रख दे, तो वह भी वेदों को समझने वाला कहा जाएगा।

संसार से वैराग्य होना ही संसार को ठीक से समझना है। जब तक मनुष्य इस आकर्षक संसार के मोहपाश में फँसा है, तब तक वह संसार को जानता नहीं है, वह उससे उपभुक्त हो रहा है।

जैसे कोई तैरने में कुशल व्यक्ति नदी के भँवरों में न फँसकर उसके प्रवाह को तैर कर पार कर जाता है वह नदी को ठीक से पहचानता है। वह नहीं, जो नदी के भँवर में फँसा हुआ नदी में डूब रहा है और तब भी कह रहा है कि वह नदी को जानता है। ऐसा व्यक्ति कुछ नहीं जानता।

इस प्रकार जगत् के कण कण में परमात्मा की ही सामर्थ्य विद्यमान है।

संदर्भ

1. श्रीमद्भगवद्गीता
2. श्रीमद्भागवत
3. सांख्य दर्शन
4. प्रश्नोपनिषद्
5. कठोपनिषद्
6. मुण्डकोपनिषद्
7. वसिष्ठ स्मृति,
8. देवी भागवत,
9. मनुस्मृति